P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-7* ISSUE-9* May- 2020
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

रामदरश मिश्र के कथेतर गद्य साहित्य में ग्रामीण चेतना

Rural consciousness in the non-fiction prose literature of Ramdarsha Mishra

Paper Submission: 14/05/2020, Date of Acceptance: 28/05/2020, Date of Publication: 29/05/2020

विक्रम सिंह फर्त्याल
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
स्वामी विवकानंद राजकीय
स्नात्कोत्तर महाविद्यालय
लोहाघाट (चम्पावत)
कुमाऊँ विश्व विद्यालय,
नैनीताल, उत्तराखण्ड, भारत

जगदीश चन्द्र जोशी
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी विभाग,
स्वामी विवकानंद राजकीय
स्नात्कोत्तर महाविद्यालय
लोहाघाट (चम्पावत)
कुमाऊँ विश्व विद्यालय,
नैनीताल, उत्तराखण्ड, भारत

सारांश

यह सर्वविदित है कि भारत की 70% आबादी गाँव में निवास करती है। गाँव में निवास करने वाले इन लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। यह बात सत्य है कि गाँव किसी पेड़ की जड़ की तरह होते हैं जो देश को चेतन बनाते हैं। गाँव जितना समर्थ होगा, देश उतना ही समृद्ध बनता है। किसी पेड़ की जड़ें जितनी जमीन के अन्दर विस्तार लेती है, उसकी शाखाएं,पत्ते, फूल, फल उतनी ही बड़ी मात्राएं में प्रकृति की सुन्दरता के साथ मानव के लिए लाभकारी सिद्ध होती है। सामर्थ्यवान देश के गाँव ऊर्जा के स्रोत होते हैं। यह ऊर्जा अन्न, जल खनिज किसी भी रूप में हो सकती है। गाँव सामाजिक जीवन की प्रथम पाठशाला होते हैं। रामदरश मिश्रजी ने मेरे साक्षात्कार में बताया कि वे जीवन के अधिकाँश वर्ष शहरों में रहे, मगर मन और अन्तर्रात्मा गाँव में हमेशा बनी रही। वे आज भी शहर की दुनिया से जुड़ नहीं पाये। गाँव सामाजिक दर्शनशास्त्र के केन्द्र होते हैं। युगों की यदि कल्पना जाए तो ग्रामीण सभ्यता का इतिहास सर्वाधिक प्राचीन और समृद्ध है। ग्राम सभ्यता में भारत की साहित्यिक निधि समृद्धि हुई है। समाज ने साहित्य का विकास किया और साहित्य ने सामाजिक जीवन को समृद्ध किया। इस सम्बंध में कहा जा सकता है कि दोनों का ही अटूट सम्बंध रहा है। डॉ. रामदरश मिश्र ने इन संवेगों को अपने साहित्य मे जीवित रखा, या हम कह सकते हैं कि यह उनके स्वभाव में ही था। मिश्रजी के साहित्य में कविता हो या कहानी अथवा कथेतर साहित्य, सर्वत्र गाँव के दर्शन साहित्यिक तीर्थ की तरह होते ही हैं। यह बात साहित्यानुकूल है कि गाँव रचना की धुरी में हो तो कोई भी विधा पाठकोनुकूल बन ही जाती है। शहरों का आभामय जीवन साहित्यकार की रूचि का विषय नही रहा है। यही साहित्यिक रूचि गाँवों को सामाजिक पटल पर लाने का कार्य करती है। साहित्य ने इस कार्य को बखूबी निभाया भी है। प्रस्तुत शोध पत्र में प्रसिद्ध साहित्यकार रामदरश मिश्र के कथेतर गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं में ग्रामीण जीवन की चेतना को समग्र रूप में प्रस्तुत किया गया है।

It is well known that 70% of India's population resides in the village. Agriculture is the main occupation of these people residing in the village. It is true that villages are like the root of a tree which makes the country conscious. The more able the village is, the more prosperous the country becomes. The amount of roots of a tree that takes up expansion inside the ground, its branches, leaves, flowers, fruits in equal quantity, along with the beauty of nature proves beneficial to human. The villages of a powerful country are sources of energy. This energy can be in any form of food, water and minerals. Villages are the first school of social life. Ramdarash Mishraji told me in his interview that he lived in the cities for most of his life, but the mind and the soul always remained in the village. They still could not connect with the world of the city. Villages are the center of social philosophy. If we imagine the ages, the history of rural civilization is the most ancient and rich. India's literary fund has prospered in the village civilization. Society developed literature and literature enriched social life. In this connection, it can be said that both have an unbreakable relationship. Dr. Ramdarsha Mishra kept these emotions alive in his literature, or we can say that it was only in his nature. In the literature of Mishraji, whether it is poetry or story or non-fiction, the philosophy of the village everywhere is like a literary pilgrimage. It is literature that if the village is in the axis of composition, then any genre becomes a textual choice. The merry life of cities has not been a matter of interest of the litterateur. This literary interest serves to bring villages to the social scene. Literature has also performed this work well. In the presented paper, the consciousness of rural life in various genres of non-fiction prose literature of renowned litterateur Ramdarash Mishra has been presented in full form.

मुख्य शब्द : परम्परा, जड़, चेतन, ग्राम, सांस्कृतिक, प्राकृतिक, कृषि–कर्म, आँचलिक, परिवेश, स्वभाव, मर्मस्पर्शी, साश्वत, सहयोग, मूल्यवान, प्रमाणिक, खेतीबाड़ी, हरियाली, निरालापन, बाबा, कछार नाला, बाग–बगींचे, गौरवशाली, दुर्गम, बीहड़, सांस्कृतिक।

Tradition, Root, Chetan, Village, Cultural, Natural, Agro-work, Zonal, Environment, Nature, Touching, Eternal, Cooperation, Valuable, Authentic, Cultivated, Greenery, Infrequent, Baba, Cachar drain, Garden-garden, Glorious, Inaccessible , Rugged, cultural

प्रस्तावना

''तरूणं सर्शपाशाको नवनीत घृतं पिच्छलानि दधीनि।

अल्पव्येन सुंदरि ग्रामीण जनो मिष्ट मश्यनाति।''

प्रसिद्ध निबंधकार बालकृष्ण भट्ट की इन पंक्तियों का आशय है–''हरा–भरा सरसों का साग तुरंत का मथा मक्खन, हींग और जीरा में बघारी हुई भेंस की पनीली दही से, जैसा गाँव के रहने वाले को मधुर, स्वादिष्ट भोजन सब भाँति सुगम है वैसा नगर के धनियों को भी बहुत–सा खर्च करने पर मयस्सर नहीं है। तुम्हारी समग्र सम्पत्ति का सार भूत पदार्थ 'गोधन' अर्थात गाय, बैल, भेंस, छेरी, भेडवी इत्यादि है। गोधन सम्पन्न किसान छोटे–मोटे जमीदारों को भी कुछ माल नहीं समझता।''[1] यह सत्य है कि गाँव प्राकृतिक सम्पदा के भण्डार हैं। गाँव के महत्व पर प्रकाश डालते हुई हिन्दी के युग–प्रर्वतक साहित्यकार भारतेन्दु हरिशचन्द्र का कथन है– ''भारत का स्वत्व और आत्मा गाँव है। यह एक यथार्थपरक सत्य होने के साथ–साथ ग्रामीण जीवन को साहित्य का केन्द्र होने का गौरव की अनुभूति देता है।''[2] भारत गाँवों का देश है। देश में कुल 640,867 गाँव हैं। जिसमें 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य में संलंग्न है। यह भी सत्य है कि यह वर्ग समाजपोषक का कार्य करता है। कृषि भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, और इस महान कार्य में लगे गाँव देश की आत्मा के समान है। रीढ़ और आत्मा के बिना जिस प्रकार शरीर की कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार गाँव के बिना देश की कल्पना निरर्थक है। प्राचीन सभ्यता हो या संस्कृति उसे जानने व समझने के लिए ग्राम जीवन के अध्ययन की आवश्यकता होती है। बदलते सामाजिक परिवेश का स्वरूप क्या होगा? सामाजिक, भौगोलिक और आर्थिक ढ़ाँचा इस तरह बदलता रहा तो भावी ग्राम कौन–सा रूप धारण करेगा? इन सभी बातों को जानने के लिए अध्ययन की आवश्यकता होती है। साहित्य इसका स्रोत है, जिसके प्रलेखकीय स्रोतों में ग्रामीण जीवन और उसके स्वरूप का व्यापक तथा गहन चिंतन हुआ है।

हिन्दी साहित्य के विविध कालों में काव्य, उपन्यास, कहानी आदि में ग्रामीण दर्शन का पर्याप्त वर्णन मिलता है। यदि हम साहित्य के वैदिक काल को देखें तो ग्रामीण जीवन की विषद व्याख्या वैदिक ग्रंथों में की गयी है। अन्य कोई साधन हमें वैदिक काल की प्रमाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं कराते। कृषि से सम्बंधित विभिन्न कार्यों का उल्लेख रामायण और महाभारत में देखने को मिलता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में देंखें तो भारवी और माघ ने भी अपने साहित्य में गाँवों को स्थान दिया है। आधुनिक काल में भी साहित्य की हर विधा में ग्रामीण जीवन सर्वाधिक लोकप्रिय बनकर उभरा है। गाँवों से निकलने वाली श्रेष्ठ प्रतिभाएं राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर छाकर ग्राम दर्शन और संस्कृति का अमर संदेश देती रही हैं। चूँकि भारतीय समाज में गाँव केन्द्रीय भमिका में है। दुनिया के इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों का यदि अवलोकन करें तो पाते हैं कि रोम जैसी विकसित और मेसोपोटामिया जैसी विस्तृत बड़ी से बड़ी सभ्यताएं समय के साथ नष्ट हो गयीं। मगर भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति न केवल अक्षुण्य रही बल्कि देश–दुनिया के सामने अपनी मजबूत ग्रामीण विरासत के कारण अडिग भी रही। जब भारत के शहर डगमगाने लगे उस समय यहां के गाँव अपनी सांस्कृतिक जड़ों के कारण गाँव पल्लवित और पुष्पित होते रहे।

ग्रामीण जीवन दर्शन, उसका अलबेलापन, स्थायित्व और निश्छल स्वभाव को समझने के लिए साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से समृद्ध किया। अलग–अलग युगों में विभिन्न विधाओं के माध्यम से समकालीन समाज, सामाजिक संदर्भ और परिस्थितियाँ, चाहे आर्थिक हों या धार्मिक अथवा राजनैतिक हों या सामाजिक आदि सभी विषयों पर अपनी वाणी और लेखनी से विभिन्न रचनाओं में उकेर कर उसे जीवंत बनाया। साहित्य के इन सरोकारों ने न केवल इस ग्राम निधि को समृद्ध किया बल्कि वास्तविक यथार्थ को समाज के सामने तारांकित किया। इसके कारण बहुमूल्य ग्राम निधि का सर्वग्राही और सर्वस्पर्शी चित्र भी प्रस्तुत किया। साहित्य ने समाज में सर्वकालिक रूप से सर्वव्यापक प्रयास कर समाज को हमेशा मार्ग से भटकने नहीं दर्शन की मर्मस्पर्शी कथा देकर उसे बिखरने नहीं दिया। गाँव शास्वत है, उसका आत्म–निर्भर स्वरूप देश को सशक्त है।

प्रस्तुत शोध के आलेख में रामदरश मिश्रजी के कथेतर गद्य साहित्य की विधाओं के माध्यम से ग्रामीण चेतना को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

शोध का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का मुख्य उद्देश्य यह है कि वर्तमान में जो शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण गाँव के जीवन को आशातीत संकट में आने से बचाने के लिए किए गये मिश्रजी के समतामूलक साहित्यिक प्रयासों को उजागर करना, समाज में चेतना लाने का प्रयास करना है। गाँव का अस्तित्व किसी भी देश के लिए उसका स्वयं की नींव है। उस पर होने वाला प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रहार प्रकृति पर प्रहार है। प्रकृति के खिलाफ जाने वाले देश की नींव कमजोर पड़ती है। यह बात यहां ध्यान देने योग्य है कि प्राचीन मनीषियों ने सभी क्षेत्रों में काफी उन्नति की–बड़े–बड़े शहर भी बसे, परन्तु

उन्होंने ग्राम जीवन के आदर्श को बचाए रखने के लिए उसकी प्रकृति कभी छेड़–छाड़ नही की। मिश्रजी ने कथेतर साहित्य में ग्राम चेतना के माध्यम से गाँव के गौरवशाली इतिहास व उसके निश्छल स्वरूप को बचाये रखा है। गद्य साहित्य की कथेतर विधाओं में ग्रामीण चेतना का स्मरणीय कार्य रामदरश मिश्रजी ने किया। डॉ. रामदरश मिश्र के ग्रामीण चेतना के अविस्मरणीय और व्यापक कार्य को साहित्यिक पटल पर लाना ही शोध का प्रथम उद्देश्य है।

साहित्यावलोकन

साहित्य में ग्राम शब्द उसके चेतन से जुड़ा है। ग्राम का वैदिक रूप 'जन' से सम्बद्ध है। 'जन', अर्थात लोगों का एक लघु समूह, जिसका सम्बंध परिवार से है। भारतीय वैदिक परम्परा में समाज के संगठित रूप को भी 'जन' काहा गया है। प्राचीन काल से ही ग्राम शब्द भारतीय समाज व्यवस्था का आधार भूत एकक रहा है। यहां के शास्त्रों और समाज का विकास आरोही श्रृंखला के रूप में हुआ है। जिसके सबसे आरम्भ में एक गृह अथवा कुल था। उसके ऊपर आगे चलकर ग्राम, विशु, जन तथा राष्ट्र एकक थे। विश्व साहित्य और समाज दर्शन के विभिन्न आयामों में 'ग्राम' शब्द की संज्ञा अद्यमन भारत के लिए ही प्रयुक्त होती है।

हिन्दी साहित्य के चारों कालों में गाँव को केन्द्र में रखकर कविता, कहानी, गीत उपन्यास आदि लिखे गये हैं। देश की आजादी से पहले गाँव को केन्द्र में रखकर प्रेमचन्द जी ने पद्य के इतर अनेकों गद्य रचनाएं गाँव के इर्द–गिर्द ही रची।

डॉ. रामदरश मिश्रजी स्वातंत्रोत्तर युग के श्रेष्ठ और सूक्ष्म दृष्टि वाले साहित्कारों में से एक हैं। मिश्रजी उन लेखकों में से हैं जिन्होंने गाँव को अपनी रचना के केन्द्र में रखा। उनका कथेतर साहित्य गाँव और उसके अल्हड़पन का जीवंत उदाहरण है। गाँव असीमित ऊर्जा के स्रोत होते हैं। यही असीमित ऊर्जा और जिजीविषा मिश्रजी के जीवन में दिखाई देती है। उनका कथेतर गद्य साहित्य गाँव के इर्द–गिर्द ही घूमता है।

मिश्रजी के ललित निबंध बबूल और कैक्टस, घर परिवेश, नया चौराहा, छोटे छोटे सुख और कितने बजे है? निबंध संग्रहों में गाँव और उसका जीवन केन्द्रीय भूमिका में हैं। 'बबूल और कैक्टस' निबंध में मिश्रजी ने गाँव के प्राकृतिक सम्पदा का और शहरों में इसकी दुर्लभता का जिक्र किया है। वे लिखते हैं जब वे अपने किसी मित्र के यहां गये थे तो घर के ड्रॉइंग रूम में एक जगह पर बबूल की टहनी खोस रखी थी। वे सोचते हैं कि यह बबूल कितना भाग्यशाली है जो रेत से आलीशान बंगले में आ गया है। परन्तु यह तो कमरे के लिए नहीं बना है। इस पर उन्हें अपने गाँव की याद आती है–''मैंने अपने खेतों के इन बबूलों की डालियों को कई बार कटते हुए देखा है– दादी मरी है, दादा मरे हैं, माँ मरी है, बहन मरी है, और हर बार इस हमदर्द साथी ने अपनी डालियाँ लुटाई हैं। कटकर आधा हुआ, फिर पनपा है।''[3] इस कथन में गाँव की परम्परा जुड़ी है, संस्कृति की डोर है और उस विरासत को आगे बढ़ाने का संकल्प है। प्रकृति का महात्म्य है तो पूर्वजों की थाती भी है। इस बंधन में बंधा मनुष्य हर कार्य करने से पहले आगे–पीछे सोचता है। यही धारणा उसे इस मिट्टी से अलग नहीं होने देती है। मिश्रजी का यही सोचते हुए व्यंग्य करते हैं–''मैं मित्र के कमरे में देख रहा था कि कैक्टस की खिलती हुई आधुनिक रंगत फूलदान में मुरझाए हुए गँवार बबूल पर बहुत ही आधुनिक ढंग से मुस्कुरा उठती थी। ... मगर कौन जाने कल बबूल भी जीना सीख ले।''[4]

'नया चौराहा' निबंध गाँव दर्शन का अक्षय पात्र की तरह है। इस संग्रह में प्रत्येक निबंध से ग्रामीण स्वर अनायास ही फूट पड़ते हैं। प्रेमचन्द के गोदान पर आधारित निबंध 'होरी के पूत हीरो' में मिश्रजी गोबर के बारे में सवाल करते हैं और जानना चाहते है कि तब से होरी के पुत्र का जीवन कितना बदला है अर्थात गाँव का सफर कहाँ तक जा सका है–

'गोबर कहाँ है दादा?'

''वह तो कलकत्ते में है। आता जाता रहता है, साल–दो साल बाद। देह पेर–पेरकर चटकल में काम करता है, किन्तु क्या हो सका? एक पक्का मकान भी तो नहीं बन सका। हाँ, अपने पाँच बीघे खेत जरूर धीरे–धीरे अपने हो गये हैं। कर्ज–वर्ज तो अब भी चढ़ता उतरता रहता है, कभी महाजन का कभी सरकार का।'' [5]

गोबर का बेटा चंदन जो पढ़ाई के नाम पर शहर में पैसे फूक रहा है उसके रूमानियत और शहरी ग्लैमर भरे स्वभाव के बारे में मिश्रजी लिखते हैं –

''मैं सोचता हूँ, कितनी बड़ी ताकत थी इस गाँव की मिट्टी में ! कितनी ठोस है यह मिट्टी ! क्या इसकी शक्ति और संवेदना की उपेक्षा कर, उसे हीन समझकर एक ताकतवर पीढ़ी उग सकती है।''[6]

मिश्रजी गाँव के परिवर्तन में शहर की भूमिका का उल्लेख कर इस संदर्भ में कहना चाहते हैं कि यह बदलाव शहर के लिए अच्छा हो न हो परन्तु अभावों के बावजूद शांत ग्रामीण जीवन पर मँडराता खतरा जरूर है।

'कितने बजे हैं?' में ग्रामीण जीवन के अभावों में सरल और भोला स्वभाव कितना निश्छल और अनूठा है जब आवाज आती है कितने बजे हैं–''साईकिल से आते–जाते, एकाएक आत्मचिंतन से ध्यान टूट जाता है और देखता हूँ–एक चरवाहा मस्ती से बैठा भेंसें चरा रहा है और समय पूछ रहा है, सड़कों पर भटकता हुआ एक पागलनुमा व्यक्ति समय पूछ रहा है, जूते सीता हुआ एक मोची समय पूछ रहा है, घास काटकर आता हुआ किसान समय पूछ रहा है। भीख मांगता एक व्यक्ति समय पूछ रहा है, फेरी वाला समय पूछ रहा है। समय....समय..... समय...।''[7] लेखक का मन्तव्य है कि मैं अचकचाकर उन पर दृष्टि डालकर सोचता है कि कौन हैं ये लोग? पर सोचने पर पता लग सकता है कि यही तो गाँव है। समय बताना पड़ेगा। क्योंकि शहर तो में तो रिश्ते टूट रहे हैं।

'रिमझिम बरसत मेघ रे' में मिश्रजी ने रेणु के 'मैला आँचल' का आश्रय लिया है। जो ठेठ ग्रामीण सोच पर रचा गया है। मैला आँचल में डॉ. के गाँव के प्रति रागात्मक लगाव के बारे में लिखा है–''डॉ. पर यहाँ की मिट्टी का मोह सवार हो गया है।''[8] गाँव की समस्या की ओर संकेत करते हुए मिश्रजी लिखते हैं–''सैकड़ों कंठों में एक विरहिनी है। यह अभाव ग्रस्त इलाका है जहाँ के

लोग अर्थोपार्जन के लिए बाहर जाते हैं। विरह दुहरा है। विरहिनियों के अभावग्रस्त स्वर में प्रियतम के विछोह का स्वर मिल जाता है। वे पति से अनुनय करती हैं कि अषाढ़ मास में उन्हें छोड़कर न जायें। दुहरे दर्द से दंशित गीत को खेतों में काम करते सैकड़ों कंठो से फूट रहा है और एक घने अवसाद की सृष्टि कर रहा है। मिथिला की पूरी जमीन अपने दर्द में गाने लगती है।''[9]

'जहाँ मैं खड़ा हूँ' निबंध में मिश्रजी ने बाढ़ की विभीषिका का दारूण्य दिखाया है–''पानी...पानी...पानी.... पानी...दिन तो कट जाते हैं, रात कैसे कटे ? आँखों में नींद है, लेकिन चारों ओर से चूँती हुई पानी की बूँदें छन्न–छन्न शरीर पर गिरती है। पानी का शोर, रात के सन्नाटे में और गहरा और भयानक हो गया है। ....वैसे सांपों की यहां क्या कमी? खपरैल पर ये तिति–तिति करते भर रेंगते रहते हैं।''[10]

मिश्रजी का बचपन खेत–खलिहानों, बाग–बंगीचों और गाँव की छोटी–सी दुनिया में बीता था। आगे का एक दीर्घ जीवन शहरों की चकाचौंध में बीता और बीत रहा। परन्तु गाँव की मिट्टी उन्हें पुकारती रही है। 'मेरा आत्मसंघर्ष' निबंध में मिश्रजी ने गाँव की दुश्वारियों की ओर संकेत किया है–''मेरे बचपन का जीवन तो सड़क नहीं, पगडंडियाँ रहा है। जहाँ मैं पैदा हुआ वहां दो नदियों के बीच घिरा कछार है। जहां दूर–दूर तक सड़क नाम की कोई चीज नहीं है।''[11] गाँव छोड़ने का दर्द इस निबंध में कुछ यों छलका–

''फिर हवा बहने लगी कहने लगी बनराइयाँ,
काँपने फिर–फिर लगीं ठहरी हुई वनराइयाँ।''[12]

'नया चौराहा' निबंध में आधुनिकता के दौर में गाँव के सिमटने का दर्द साफ दिखाई देता है–''मुझे कहां पता था कि मैं चौराहा बन जाऊँगा और कहां पता था कि मुझ पर धीरे–धीरे कुछ दुकानें उगती चलीं जायेंगी।''[13] चौराहे के दर्द को आगे लिखते हैं–''मैं एक उपेक्षित बाग–खण्ड आधुनिक चौराहा बनता जा रहा हूँ, इस पर मुझे गर्व होना चाहिए और है भी, किन्तु जब आधी रात के सूनेपन में अकेला होता हूँ तो न जाने क्यों पिछली कुछ चीजें मुझे आवाज देने लगती हैं। कुछ स्मृतियों की सुगन्ध अपनी सांसों में महसूस करने लगता हूँ। उन्हीं में से एक है रामलीला।''[14]

'पावस, गाँव, कविता और मैं' में मिश्रजी गाँव की जीवटता को प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं किस प्रकार पावस ऋतु का इंतजार किया जाता है–

''मैं आषाढ़ का पहला बादल, मेरी राह न रोको।''[15]

वर्षा न होने पर गाँव में एक परम्परा है कि लोक गीतों के माध्यम से जल देवता का आह्वान गाँव की महिलाएं इस प्रकार करती हैं–

''बरखू ए बरखू
कहवाँ तू जाके लुकइल ए बरखू।''[16]

'पहला पानी' में रघुवीर सहाय की गाँव के परिप्रेक्ष्य में उस छवि का उल्लेख किया है–

''फुनगी पर बैठी गौरया
खुलकर बरसा पहला पानी....
बह चली गाँव की गैल गैल
कच्ची मिट्टी के सुघर गेहुई दीवारें
मन ही मन में भीगीं।''[17]

मिश्रजी ने गाँव के इस पावस को बड़े सिद्धत से जिया और साहित्य जगत में उतारा। इन अनुभवों को पढ़कर कोई भी रोमांचित हो उठता है। गाँव साकार हो जाता है। इन पंक्तियों को निबंध में स्थान दिया है–

''तालों के पंक हँसी कास शरद आयी...
घाटों ने आर–पार के बंधन तोड़ दिये
मेलों ने कंठों में नये राग जोड़ दिय...
जाए ऋतु लौट ना उदास शरद आयी।''[18]

मिश्रजी ने अपने निबंध 'मेरा घर कहाँ है?' में व्यसाय आधारित पलायन को गाँवों के अस्तित्व के लिए खतरा बताया है। वर्षों शहरों की धूल–खाक छानने के बाद जब गाँव लौटना पड़ता है तो बस यही उद्‌गार निकलते हैं–''नदियों, तालाबों, चाँदनी रातों, सुबहों, शामों की कितनी ही छवियाँ हमारे सौन्दर्य–बोध में उतरती जाती थीं। फसलों के कितने–कितने रंग आँखों में उमड़ते थे। खलिहानों की गंध साँसों से होते हुई प्राणों में समा जाती थी।''[19] आगे लिखते हैं–''देख इस नदी के पार वह गाँव है न, उसके बाद वाले गाँव के बाद अपना गाँव है।' मिश्रजी के अनुसार छोटे–छोटे सुखों का आनन्द गाँव में घर करता है।

गाँव आजादी के केन्द्र थे जहाँ योजनाएं बनती थी और गाँवों से क्रांतिवीर निकलते थे। गाँव तक भी चेतना और योजनाओं केन्द्र हुआ करते थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है–''लोग नारे लगाते रहे, उत्तेजित होते रहे, नेहरू जी शांत बैठे रहे।''[20] ये वे लोग थे जो अपने नेताओं की बात मानते थे। सच्चे दिल से विश्वास करते थे। कोई छल–प्रपंच इन्होंने सीखा नहीं थे। वही गाँव के अल्हड़पन में साफगोई से जीते थे।

अपने संस्मरण 'रामदेव शुक्ल : शहर में गाँव' पर अपने एक मित्र प्रो. रामदेव शुक्ल के बारे में लिखते हैं कि किस प्रकार वे गाँव के प्रति संवेदनशील थे। गाँव उनमें और वे गाँव में बसे थे। किस प्रकार गाँव को, पारिवारिक माहौल, संस्कार, व्यवहार आदि को अपने साथ रखते थे–

''जब वे बाद में विश्वविद्यालय के एक बड़े से मकान में आ गये तो वे गाँव से खेत भी उठा लाए। उस मकान के बड़े से अहाते में पेड–पौंधे तो थे ही, तमाम तरह की सब्जियाँ भी थी, फूल थे, फसलें थीं। जाड़े और बसंत ऋतु में वहाँ जाता था तो मुझे अपना गाँव मिल जाता था।''[21]

'विवेकी राय : किसान लेखक' में उनके गाँव प्रेम को दिखाया गया है। प्रसिद्ध लेखक विवेकी राय शोध आलेख 'स्वातंत्रोत्तर हिन्दी कथा साहित्य में ग्राम जीवन' और बबूल उपन्यास का जिक किया है। विवेकी राय के गाँव के प्रति लगाव को इस संस्मरण में मिश्रजी बताते हैं–

''विवेकी राय देहाती दुनिया की ऊष्मा से बने एक सीधे–सच्चे कर्मठ इंसान हैं। उन्होंने कड़ी मेहनत से अपने को कहां से कहां तक उठाया। वे गाँव की खेती–बारी भी देखते हैं और गाजीपुर में अध्यापन और साहित्य सेवा में भी लीन रहे। गाँव के उत्तरदायित्व का

पूरा निर्वहन करते हुए भी उन्होंने बहुत लगन से विपुल साहित्य पढ़ा और लिखा।''[22]

'चैत आया है' में मिश्रजी ने गाँव में चैत्र मास के आने की खुशी का माँ के लोकगीतों के साथ अनुपम समावेश किया है–

''चैत का महीना भी कितना प्यारा महीना होता है। इसी महीने में राम का जन्म हुआ था। उस दिन रामनवमी का त्योहार बनाया जाता है और शीतला माई तथा अन्य देवियों की पूजा होती है। शीतला माई इस महीने इसी नीम वृक्ष पर झूला झूलती हैं। माँ के कंठ से गाया हुआ गीत अभी मेरे भीतर तैर रहा है–

निबिया के डरिया मइया झूलेली हिंडोलवा
कि झूलि झूलि ना
मइया मोरी गावेली गितिया कि झूलि झूलि ना''[23]

मिश्रजी ने अपने गीत में भी चैत की महिमा का गाँव के संदर्भ में कितना सुन्दर गीत गाया है–''चैत आया है, चैत आया है/चैता आया चैता के फूल लाया है/नीमों की डाल फुनगिया गयीं/कि हरे–हरे पातों की झाँवरी/फूलों के गुच्छ गहगहा गये/....ऊपर पाकड़ के घन कुंज से/कोयल ने गीत नया लहराया है।''[24]

'यह दिन भी बीत गया' डायरी में मिश्रजी अवकाश प्राप्ति के काफी वर्ष बाद तब जब लोग उनके सेहत की चिंता में पत्र लिखते हैं तो उस समय ऐसे का उल्लेख उन्होंने वर्ष 2006 के अपने लेख में लिखा है–''अपने गाँव की मटमैली मिट्टी से गहरे लगाव का बोध मुझे सदा साधारणता से जोड़ता रहा। चाहे शिक्षा का क्षेत्र रहा हो, चाहे साहित्य का, वैशिष्ट्य की ऐंठ और बोझ से अपने को बचाता रहा। दूसरों की नजर में बड़ा बने रहने का निरंतर सचेत प्रयास आदमी को बुरी तरह बीमार कर देता है।''[25]

ग्राम चेतना के कार्य को साहित्य ने अपना कर उन्हें समर्थ बनाने की राह आसान करने के साथ–साथ उसे सजग और संवेदनशील बनाए रखा। प्रेमचन्द के समय से ग्रामीण चेतना का ज्वार और तेजी के साथ आगे बढ़ा। प्रगतिशील साहित्य के समय गाँव और मजदूर के बारे में सोचा गया। मिश्रजी ने सभी साहित्यिक वादों बाहर निकल अपनी रचनाओं को स्वतंत्र लेखन किया। साहित्य की कथेतर विधाओं में निबंध, आलोचना, संस्मरण, रेखाचित्र और डायरी साहित्य में उल्लेखनीय कार्य ग्रामीण चेतना को केन्द्र में रखकर किया। विषम परिस्थितियों में उन्होंने गाँव के सौन्दर्य का अद्भुत वर्णन किया। गाँव में प्लेग फेलने और गाँव के बच्चे दूर रिस्तेदारों के घर शिफ्ट होने पर भी गाँव की हरियाली ही थी जो सुकून देने वाली होती थी। इस दृश्य का वर्णन मिश्रजी के शब्दानुसार–''राप्ती की घाटी में फैले हुए खेतों का अपना सौन्दर्य था। एक अद्भुत गहराई हरियाली यहाँ एक पर एक लोट रही थी, पानी में निर्मलता का घनत्व और मुझे अच्छा लग रहा था। क्योंकि मुझे अपने ताल वाले खेतों की याद आ रही थी, और यह याद इस अच्छा लगने को थोड़ा अवसाद से भर देती थी।''[26]

निष्कर्ष

वर्तमान विश्व परिदृश्य भौतिकवाद की ओर बढ़ने के साथ–साथ एक नये अलगाव की ओर अग्रसर हो रहा है। जहाँ उसकी जरूरतों के सामने प्रकृति और सामाजिक सरोकार पीछे छूटते जा रहे हैं। अर्थ और लालसा की यह अंधी दौड़ कहाँ जाकर रूकेगी कृछ निश्चित कहा नहीं जा सकता। इस रेस को जीतने के लिए मनुष्य रेसा–रेसा होने को तैयार है, चाहे प्रकृति से ही हाथ क्यों न धोना पड़े। बाजारवाद, भूमण्डलीकरण, औद्योगिकीकरण और शहरीकरण ने उसकी इस योजना में चार चाँद लगा दिये हैं। परन्तु इस विकासवाद के नाम पर कई का अस्तित्व खतरे में भी पड़ गया है। तमाम सरकारी नीतियों ने किसान के जीवन को अप्रतिष्ठित ही किया है। आलीशान अपार्टमैंट की धारणा ने कृषि और ग्रामीण जीवन को निःसंदेह गहरे जख्म तो दिये ही हैं साथ ही कई स्थानों पर अस्तित्व ही खतरे में जान पड़ता है। शहरीकरण के अंधे आकर्षण ने सूचना प्रोद्योगिकी, जनसंचार क्रांति, आर्थिक उदारीकरण, स्वार्थप्रेरित निजीकरण और वैश्वीकरण के विपलव ने अपने बढ़ते प्रभुत्व के कारण वर्चस्व बनाने के लिए ग्रामीण जीवन पर सामयिक विचार करने की मनःस्थिति को विमुख कर दिया है। इस दशा को मिश्रजी ने अपने निबंध नया चौराहा में मार्मिक ढ़ंग से वर्णित किया है।

आज समाज में अतिभौतिकवाद और कुतर्कवादी सोच ने संवेदनशीलता, सत्यता, ईमानदारी, करूणा और सहयोग के भाव को आदमी के जीवन से तिरोहित कर दिया है। इसका सीधा दुष्परिणाम साहित्य पर भी पड़ा। साहित्य में भी आज ग्रामीण जीवन का भाव शून्यता की ओर बढ़ने लगा है। समाज सेवी और भूदान आन्दोलन के जनक विनोवा भावे जी ने इस समस्या को उजागर करते हुए ग्राम परिवार की भावना के लिए लिखा है–बाजार संस्कृति जैसे–जैसे प्रभावित होती गई, गाँव जीवन में भी संबंध के बजाय साधनों का महत्व बढ़ गया। इन सभी बातों और बदलते परिवेश में गाँव का स्वरूप किस दिशा की ओर जा रहा है? भविष्य के गाँव का भावी स्वरूप और संस्थागत ढांचा कैसा होगा? औद्योगिकीकरण और संचार के इस युग में गाँव अपने–आप को किधर खड़ा शेष दुनिया के बदलते स्वरूप में गाँव अपना क्या रूप ग्रहण कर रहा है? इन सभी प्रश्नों के समाधान के लिए निरन्तर और गहन अध्ययन की आवश्यकता है। साहित्य इस अध्ययन को आदर्श और संस्कारित बनाकर समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। गाँव से सम्बंध रखने वाला या ग्रामीण परिवेश की गहन समझ रखने वाला ही आदर्श और वास्तविक ग्राम दर्शन कराने में समर्थ हो सकता है। शहर में बैठकर किया गया गाँव का चिंतन ग्रामीण साहित्य के प्रति सोच तो विकसित कर सकता है, परन्तु गाँव से जुड़ नहीं सकता। ग्रामीण जीवन का लेखक को समग्र भान होना चाहिए। इसी अधिकार के द्वारा वह अपने भाषा कौशल से ग्रामीण परिवेश का सजग चित्रण करने में समर्थ हो सकता है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि गाँव दर्शन के लिए सहज ग्रामीण भाषा का बोध और शब्दकोष होना उतना ही आवश्यक है जितना फसल उगाने के लिए मिट्टी का।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *बाल कृष्ण भट्ट–ग्रामीण जीवन, हिन्दी समय पत्रिका,महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय,वर्धा महाराष्ट्र*
2. *डॉ.वीरेन्द्र अग्रवाल–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य में भाव बोध स्थापनाएं और प्रतिस्थापनाएं*
3. *डॉ. स्मिता मिश्र–रामदरश मिश्र रचनावली भाग–10, नमन प्रका. दिल्ली, पृ. 83*
4. *डॉ. स्मिता मिश्र–रामदरश मिश्र रचनावली भाग–10, नमन प्रका. दिल्ली, पृ. 84*
5. *डॉ. रामदरश मिश्र–नया चौराहा, अमन प्रका. कानपुर, पृ. 15*
6. *डॉ. रामदरश मिश्र–नया चौराहा, अमन प्रका. कानपुर, पृ. 20*
7. *डॉ. स्मिता मिश्र–रामदरश मिश्र रचनावली भाग–10, नमन प्रका. दिल्ली, पृ. 223*
8. *डॉ. रामदरश मिश्र–छोटे छोटे सुख, भारतीय ज्ञानपीठ प्रका. दिल्ली, पृ. 38*
9. *डॉ. रामदरश मिश्र–छोटे छोटे सुख, भारतीय ज्ञानपीठ प्रका. दिल्ली, पृ. 44*
10. *डॉ. रामदरश मिश्र–नया चौराहा, अमन प्रका. कानपुर, पृ. 63*
11. *डॉ. रामदरश मिश्र–घर परिवेश, साहित्य सहकार प्रका. दिल्ली, पृ. 18*
12. *डॉ. रामदरश मिश्र–घर परिवेश, साहित्य सहकार प्रका. दिल्ली, पृ. 23*
13. *डॉ. रामदरश मिश्र–छोटे छोटे सुख, भारतीय ज्ञानपीठ प्रका. दिल्ली, पृ. 96*
14. *डॉ. रामदरश मिश्र–छोटे छोटे सुख, भारतीय ज्ञानपीठ प्रका. दिल्ली, पृ. 101*
15. *डॉ. रामदरश मिश्र–घर परिवेश, साहित्य सहकार प्रका. दिल्ली, पृ. 140*
16. *डॉ. रामदरश मिश्र–घर परिवेश, साहित्य सहकार प्रका. दिल्ली, पृ. 142*
17. *डॉ. रामदरश मिश्र–घर परिवेश, साहित्य सहकार प्रका. दिल्ली, पृ. 145*
18. *डॉ. रामदरश मिश्र–घर परिवेश, साहित्य सहकार प्रका. दिल्ली, पृ. 148*
19. *डॉ. रामदरश मिश्र–नया चौराहा, अमन प्रका. कानपुर, पृ. 120*
20. *डॉ. रामदरश मिश्र–सहचर है समय, परमेश्वरी प्रका. 111*
21. *डॉ. रामदरश मिश्र–सहयात्राएँ, अमन प्रका. कानपुर, पृ. 139*
22. *डॉ. रामदरश मिश्र–एक दुनिया अपनी, आलेख प्रका., शाहदरा दिल्ली पृ. 146*
23. *डॉ. रामदरश मिश्र–बाहर भीतर, इन्द्रप्रस्थ प्रका. दिल्ली, पृ. 83*
24. *डॉ. रामदरश मिश्र–बाहर भीतर, इन्द्रप्रस्थ प्रका. दिल्ली, पृ. 85*
25. *डॉ.रामदरश मिश्र–आते जाते दिन, इन्द्रप्रस्थ प्रका. दिल्ली, पृ. 97*
26. *रामदरश मिश्र–सहचर है समय, परमेश्वरी प्रका. प्रीत विहार, दिल्ली, पृ. 50*